P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika
E: ISSN NO.: 2349-980X Vol-III* Issue-III* November-2015

पर्यावरण संरक्षण एवं राजस्थानी लोक साहित्य

वेद प्रकाश यादव
वरिष्ठ व्याख्याता,
भूगोल विभाग,
बा.शो.रा. राज.कला महाविद्यालय,
अलवर, राजस्थान

सारांश

मानव अपने उद्‌भव के बाद आखेटक, वस्तुसंग्रहक, पशुपालक, कृषक का जीवन यापन करता हुआ आज वैज्ञानिक–तकनीकि–औद्योगिक क्रान्ति के युग में रह रहा है। इस कालावधि में मानव द्वारा की गई वैज्ञानिक–तकनीकि प्रगति ने मानव के जीवन में आमूलचूल परिवर्तन ला दिया है। अधिकाधिक सुविधाभोग की लालसा ने उसे भौतिकवाद की अन्धी दौड़ में धकेल दिया है। विकास के साथ मानव–पर्यावरण के अन्तर्सम्बन्धों में निरन्तर परिवर्तन होता रहा है। आज मानव प्रकृति का शोषक बन गया है। उसके कार्यकलापों ने पर्यावरण के विभिन्न जैविक–अजैविक घटकों यथा–जल, वायु, मृदा, वनस्पति, जन्तु वर्ग को हानि पहुँचाकर पर्यावरण संतुलन को गड़बड़ा दिया है। जिससे जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण, मृदा प्रदूषण, ओजोन क्षय, ग्लोबल वार्मिंग जैसी अनेक पर्यावरणीय समस्याओं न जन्म लिया है। आमजन पर्यावरण सन्तुलन के प्रति काफी संवेदनशील रहा है वह मानव के कार्यकलापों से उत्पन्न परिस्थितियों के दूरगामी प्रभावों को जानता था। आमजन के अनुभवों को शब्दों में पिरोने वाले लोकरचनाकार लोकगीतों, लोकगाथाओं, लोक कहानियों, कहावतों आदि के माध्यम से पर्यावरण संरक्षण की सीख दीर्घकाल से देते आये हैं। लोक साहित्य सहज, सरल एवं कण्ठजीवी होने के कारण यह दादी–नानी की कहानियों, खेत–खलिहान में लोकगीत गाती स्त्रियों, चौपाल में पूछी जाने वाली पहेलियों, जब–तब कही जाने वाली कहावतों के माध्यम से कब एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक पहुंच गया, पता भी नहीं चलता। दीर्घकाल से लोक साहित्य समाज को शिक्षा देता आ रहा है। पर्यावरण चिंतन के क्षेत्र में भी लोक–रचनाकारों ने काम किया है। लोक साहित्य साधारण जनता को अनौपचारिक तरीके से पर्यावरण संरक्षण एवं संवर्द्धन की सीख देता रहा है। प्रस्तुत शोध–पत्र में राजस्थान के मारवाड़ एवं राठ क्षेत्र में प्रचलित कहावतों तथा राठ क्षेत्र में प्रचलित एक लोकगीत में व्यक्त पर्यावरण संरक्षण सम्बन्धी विचारों का विवेचन किया गया है।

मुख्य शब्द : लोक साहित्य, पर्यावरण संरक्षण, लोकरंजनी साहित्य, लोकमानस, कलम–कागज जीवी, कण्ठजीवी, लोकगीत, लोक कहावतें।

प्रस्तावना

लोक साहित्य वह मौखिक अभिव्यक्ति है, जो भले ही किसी व्यक्ति ने गढ़ी हो, पर जिसे सामान्य लोक समूह अपना मानता है और जिसमें लोक की युग–युगीन वाणी की साधना समाहित होती है, जिसमें लोक मानस प्रतिबिंबित रहता है।[i] लोक साहित्य वह लोकरंजनी साहित्य है जो सर्वसाधारण समाज की मौखिक भावमय अभिव्यक्ति करता है।[ii] डॉ. सत्येन्द्र के अनुसार लोक साहित्य के अन्तर्गत वह समस्त बोली या भाषागत अभिव्यक्ति आती है जिसमें (अ) आदिम मानस के अवशेष उपलब्ध हों (आ) परम्परागत मौखिक क्रम से उपलब्ध बोली या भाषागत अभिव्यक्ति हो, जिसे किसी की कृति न कहा जा सके, जिसे श्रुति ही माना जाता हो और जो लोकमानस की प्रवृत्ति में समायी हो (इ) कृतित्व हो लेकिन वह लोकमानस के सामान्य तत्त्वों से युक्त हो कि उसके किसी व्यक्तित्व के साथ सम्बद्ध रहते हुए भी लोक उसे अपने ही व्यक्तित्व की कृति स्वीकार करे।[iii] लोक साहित्य पर अपने विचार व्यक्त करते हुए डॉ. तेजनारायण लाल ने ठीक ही लिखा है–''साधारण जनता जिन शब्दों में गाती है, हँसती है, रोती है, खेलती है–उन सबको लोक साहित्य के अन्तर्गत रखा जा सकता है।''[iv] डॉ. शंकर लाल यादव लिखते हैं–लोक साहित्य एक परम्परा निधि है जिसे लेखनी ने न कभी संवारा है, न सजाया है और न कदाचित कभी इसे लेखनी की सहायता मिली है। यह तो प्रारम्भ से समाज की जिह्वा पर ही आसीन रहा है। सभ्यता और संस्कृतियों का उत्थान–पतन हुआ, साहित्य बना और बिगड़ा, परन्तु लोक साहित्य का स्रोत कभी शुष्क नहीं हुआ और आज भी उसकी धारा प्रवाहमान है।[v]

साहित्यकारों द्वारा दी गई लोक साहित्य की उक्त परिभाषाओं का अवलोकन करने से स्पष्ट है कि लोक साहित्य व्यक्ति चेतनारहित भावों की

जनभाषा में रचित मौखिक अभिव्यक्ति है। लोकसाहित्य कलम–कागजी जीवी नहीं वरन् कण्ठजीवी है। स्वाभाविकता, स्वच्छन्दता, सरलता, सामुदायिकता इसके प्रधान गुण हैं। वस्तुतः लोकसाहित्य समग्र लोक के राग–विराग, हर्ष–विषाद, सुख–दुःख आदि भावों एवं अनुभूतियों की सहज एवं सरस अभिव्यक्ति है।

डॉ. सत्येन्द्र, डॉ. कुन्दनलाल उप्रेती, डॉ. भुवनेश्वर 'अनुज', डॉ. शंकर लाल यादव आदि ने लोकसाहित्य को भिन्न–भिन्न आधारों पर अनेक वर्गों में वर्गीकृत किया है। सारांश रूप में लोक साहित्य के अन्तर्गत लोकगीत, लोकगाथा, लोककहानी, मुहावरे, कहावतें, चुटकुले, पहेलियाँ आदि को शामिल किया जाता है।

राजस्थान का निवासी जल, जंगल के महत्त्व को जितना जानता ह उतना शायद भारत के अन्य राज्यों का व्यक्ति नहीं क्योंकि भारत का उपोष्ण कटिबन्धीय यह राज्य वर्षा के अभाव एवं अनिश्चितता के कारण प्रतिवर्ष अपने किसी न किसी हिस्से में जल–संकट से जूझता रहता है। वर्षा की कमी के कारण यहाँ धरातलीय जल एवं भूमिगत जल की कमी बनी रहती है। वृक्ष, फसलों, पशुधन पर जल अभाव का विपरीत प्रभाव सदियों से यहाँ का निवासी देखता एवं झेलता आया है। ऐसे में जल, वृक्ष, जन्तुओं की रक्षा करना उसकी प्रकृति एवं प्रवृत्ति बन गई। वह इतना जानता है कि पर्यावरण के विभिन्न घटक परस्पर अन्योन्याश्रित होते हैं। वह प्रकृति एवं मानव के अन्तर्सम्बन्धों की वैज्ञानिक व्याख्या करने में चाहे समर्थ न हो लेकिन प्रकृति के मध्य सामंजस्य की आवश्यकता को वह अनुभव करता है। इसलिए पर्यावरण को सुरक्षित रखने, संसाधनों के मिव्ययतापूर्ण उपयोग के प्रति भी सचेष्ट एवं चिंतित रहता है। यही कारण है कि उसके लोकगीतों, कहावतों में भी सदियों से पर्यावरण संरक्षण की सीख दी जाती रही है। प्रस्तुत पत्र में पर्यावरण संरक्षण की सीख देती ऐसी कहावतों एवं लोकगीतों में वर्णित विचारों पर प्रकाश डाला गया है–

मारवाड़ी कहावतें

आक[1] ना अैळो काटिय[2], नीम ना घालिये घाव[3]।
रोहीड़ा[4] का काटणिया[5], तेरो[6] दरगा[7] होसी[8] न्याव[9]।।[vi]

उक्त कहावत में राजस्थान के मारवाड़ अंचल के लोगों की वृक्ष संरक्षण की मनोवृत्ति दर्शायी गयी है। कहावत की प्रथम पंक्ति में आमजन को आगाह किया गया है कि आक के पौधे को भी अकारण नहीं काटना चाहिए।

नीम के पेड़ को भी हानि पहुंचाना वर्जित किया गया है। क्योंकि पौधे जहाँ पर्यावरण संतुलन के लिए आवश्यक हैं वहीं मारवाड़ के चरवाहों के लिए आक और नीम उनके पशुओं–बकरी, भेंड, ऊँट का चारा भी हैं। साथ ही वहां का आमजन इनके औषधीय गुणों से भी भली–भांति परिचित हैं। वह सदियों से उक्त पौधों/वृक्षों का उपयोग चारे, औषधि, ईंधन आदि अनेक कार्यों में करता आया है। वह जानता है कि ये पौधे पर्यावरण तथा अर्थव्यवस्था के सहायक हैं। अतः इनका संरक्षण जरूरी है। कहावत की दूसरी पंक्ति में रोहिड़ा वृक्ष (जिसका पुष्प राजस्थान का राज्य पुष्प है) को काटना तो जघन्य अपराध माना गया है। कहा गया है कि रोहिड़ा वृक्ष काटने वाले का न्याय तो भगवान के दरबार में ही होगा अर्थात् उसे उसके इस कृत्य की सजा यदि इंसान न भी दे तो भी भगवान तो अवश्य देगा। रोहिड़ा भी एक सुन्दर बहुउपयोगी वृक्ष है जो अर्द्ध मरूस्थलीय क्षेत्रों में अधिक मिलता है। इसकी लकड़ी महत्त्वपूर्ण इमारती लकड़ियों की श्रेणी में आती है। इसके पत्तों, फलों को भेड़, बकरी, ऊँट खाते हैं। इसकी लकड़ी के छिलके को पानी में उबालकर उस पानी मे स्नान करने से चर्मरोग में लाभ मिलता है।

इसकी सुरक्षा हेतु भी समाज को निर्देशित किया गया है। उक्त तीन वनस्पतियों के संरक्षण के माध्यम से यह कहावत आमजन को वनस्पति संरक्षण का संदेश देती है।

इसी प्रकार एक अन्य मारवाड़ी कहावत देखिये–

घी ढुळे[10] तो म्हारो[11] कीं नी बिगड़ै[12]।
पाणी[13] ढुळै तो म्हारो जीवड़ो[14] बळ जावै[15]।।

मारवाड़ में प्रचलित यह कहावत पानी के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए आमजन से उसके संरक्षण की अपील करती है। प्रस्तुत कहावत में कहा गया है कि यदि घी बिखर जाए तो यह हमारे लिए कोई खास नुकसान नहीं ह, परन्तु यदि पानी बिखर जाता है तो हमारा मन दुःखी हो जाता है। स्पष्ट है कि जब राजस्थान का व्यक्ति पानी को घी से अधिक महत्त्व देता है तो वह उसका स्वयं भी संरक्षण करना चाहेगा और भावी पीढ़ी को भी उसके संरक्षण की सीख देना चाहेगा। जल संसाधन की महत्ता को उजागर करने में उक्त कहावत निःसन्देह समर्थ है।

इसी प्रकार राजस्थान के अहीरवाटी (राठ) क्षेत्र में प्रचलित यह कहावत देखिये–

पेड़ काटै[16] जड़ सैं[17] हर्‌या[18], पाणी[19] बिरथा[20] बहावै[21]।
पैऽरा[22] देल्यो[23] देवता, जड़ा मूळ सैं जावै[24]।।

कहावत से कहा गया है कि जो व्यक्ति हरे वृक्ष को जड़ से काट देता हैं (नष्ट कर देता है) तथा पानी को व्यर्थ बहाता है, उसकी सुरक्षा के लिए चाहे सभी देवता भी पहरा दे (रक्षा करें) परन्तु वह जड़ामूळ से जायेगा अर्थात् समूल नष्ट हो जायेगा। पानी और वृक्ष ग्रामीण अर्थव्यवस्था के आधार स्तंभ हैं क्योंकि जल के बिना न तो कृषि संभव है और ना ही पशुपालन। अन्य घरेलू जरूरतों के लिए भी निरन्तर जल की आवश्यकता बनी रहती है। जल को निरन्तर अपव्यय करने से जल की कमी होना स्वभाविक है। यह बात यहाँ का आमजन जानता था। साथ ही कुओं से पानी निकालने में अत्यधिक श्रम करना पड़ता था। इस कारण भी पानी का महत्त्व और बढ़ जाता था। वृक्ष चारे की आपूर्ति का बड़ा जरिया हैं, इनसे ईंधन एवं गृह निर्माण सामग्री मिलती है। इनके अन्य पर्यावरणीय महत्त्व तो हैं ही।

स्पष्ट है मनुष्य जल एवं वृक्ष को व्यर्थ नष्ट कर देगा तो उसकी अर्थव्यवस्था डगमगा जाएगी। जीविकोपार्जन खतरे में पड़ जाने से उसका अस्तित्व खतरे में पड़ जायेगा। अनेक सभ्यताएं जल अभाव के कारण नष्ट हो चुकी हैं। जिस प्रकार से कहावतें सदियों से पर्यावरण संरक्षण का संदेश देती रही हैं वैसे ही लोकगीत भी जनमानस में पर्यावरण चेतना जाग्रत करने एवं उसके संरक्षण का संदेश देते रहे हैं।

आइए अहीरवाटी (राठ) क्षेत्र के इस लोकगीत (भजन) पर नजर डालें–

भैया भजन करो ना रै भजन भगवान का
दरखत[25] मत काटो रै शीश भगवान का
थम[26] पेड़ लगाओ रै फरज[27] इन्सान का
भैया भजन करो.....।।
पंछी[28] मत मारो रै दरस[29] भगवान का
थम चुगो चुगाओ[30] रै फरज इन्सान का
भैया भजन करो.....।।
बिरथा[31] पाणी ना बहावो[32] रै मन दूखै[33] भगवान का
झोड़–ताळ[34] बणावो[35] रै फरज इन्सान का
भैया भजन करो.....।।
सब जीव जिनावर[36] रै मूरत भगवान का
बण खंड[37] ने बचाओ रै फरज इन्सान का
भैया भजन करो.....।।

प्रस्तुत लोकगीत (भजन) का प्रथम पद आमजन को पेड़ नहीं काटने का संदेश देता है। इसमें पेड़ को भगवान के शीश के रूप में बताया गया है। भाव यह है कि पेड़ काटने पर इतना पाप लगेगा जितना कि स्वयं भगवान का शीश काटने पर लगेगा। साथ ही वृक्षारोपण करना मनुष्य का कर्त्तव्य बतलाया गया है। इसी प्रकार द्वितीय पद में पक्षियों को नहीं मारने तथा उनको चुग्गा डालकर उनके पोषण एवं संरक्षण की बात कही गई है। पक्षियों में भी भगवान का अंश होने की बात कही गई है जो पक्षियों के प्रति 'लोक' की प्रेम भावना को तो प्रकट करता ही है साथ ही जीवात्मा की एकता की ओर भी संकेत करता है। लोक भजन के तृतीय पद में पानी को व्यर्थ बहा देने से भगवान का मन दुःखी होने की बात कहकर उसके दुरूपयोग को रोकने एवं जल को संरक्षित करने की बात कही गई है। साथ ही जोहड़–तालाब बनवाने की बात भी कही गई है ताकि वर्षा का जल संग्रहित हो सके जिससे उसका प्रत्यक्ष उपयोग भी हो सके तथा भूमिगत जल का पुनर्भरण भी। अन्तिम पद में सभी जीवों को भगवान का ही रूप बताया गया है तथा बणखंड (वन) को बचाना इन्सान का कत्तव्य निर्धारित किया गया है। स्पष्ट है कि राठ क्षेत्र का निवासी भी सदियों से वृक्ष, पानी, जीव, जंगल के महत्त्व को समझता है। वह पर्यावरण के संतुलन का पक्षधर रहा है। पर्यावरण के एक घटक की कमी या बढ़ोत्तरी दूसरे घटकों पर नकारात्मक प्रभाव न डाल सके इस हेतु पर्यावरण के सभी घटकों के संरक्षण एवं सदुपयोग की बात उक्त गीत में कही गई है। ताकि इससे सीख लेकर आमजन निजी एवं सामूहिक स्तर पर पर्यावरण का संरक्षण करे।

निष्कर्ष

उक्त कहावतों एवं लोकगीतों के विवेचन से स्पष्ट है कि पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में हमारा लोक अत्यन्त सजग एवं संवेदनशील रहा है परन्तु विज्ञान–तकनीक की प्रगति ने मानव को अत्यन्त स्वार्थी एवं सुविधाभोगी बना दिया है। इसी कारण आज पर्यावरण का प्रत्येक घटक वायु, जल, मृदा, जीवन अनेक चुनौतियों से जूझ रहा है। पर्यावरणीय समस्याएँ सार्वभौमिक होती जा रही हैं।

वायु–जल–मृदा प्रदूषण, भूमण्डलीय ऊष्णन, मौसमी विसंगतियाँ अत्यधिक बढ़ती जा रही हैं। उक्त घटनाओं के दुष्प्रभाव से पृथ्वी कराहने लगी है। पृथ्वी को बचाने के लिए अंतरराष्ट्रीय मंचों के माध्यम से प्रयास किये जा रहे हैं परन्तु सभी प्रयास मानव के स्वार्थ एवं राजनीति का शिकार होकर रह जाते हैं। अधिक सार्थक परिणाम सामने नहीं आ रहे हैं। ऐसे में लोक साहित्य द्वारा दी गई ये साधारण सी सीख गम्भीर पर्यावरणीय समस्याओं को हल करने में हमारी मददगार हो सकती हैं।

कठिन शब्द : कहावत 1

[1]आक–आक का पौधा, [2]अैळो काटिये– व्यर्थ ही काटना, [3]घालिये घाव–तने, टहनी आदि पर चोट लगाकर पेड़ को हानि पहुँचाना, [4]रोहिड़ा–एक वृक्ष, [5]काटणियां–काटने वाला, [6]तेरो–तेरा, [7]दरगा–भगवान का दरबार, [8]होसी–होगा, [9]न्याव–न्याय (फैसला)

कहावत 2

[10]ढुळै– बिखरना, [11]म्हारो–हमारा, [12]कीं नी बिगड़ै–कोई हानि नहीं होना, [13]पाणी–पानी, [14]जीवड़ो–मन, [15]बळ जावै– दुःखी हो जाना

कहावत 3

[16]काटै–काटता है, [17]जड़ सैं–जड़ से, [18]हर्‌या–हरे, [19]पाणी–पानी, [20]बिरथा–व्यर्थ, [21]बहावै–बहाना, [22]पैऽरा–पहरा, [23]देल्यो–दे ले, [24]जड़ा मूळ सैं जावै–समूल नष्ट हो जाना

लोकगीत

[25]दरखत–वृक्ष, [26]थम–आप, [27]फरज–कर्त्तव्य, [28]पंछी–पक्षी, [29]चुगो चुगाओ–चुग्गा डालो, [30]दरस–दर्शन, [31]बिरथा–व्यर्थ, [32]पाणी ना बहावो–पानी न बहाओ, [33]मन दूखै–मन दुःखी होना, [34]झोड़–ताळ–जोहड़–तालाब, [35]बणावो–बनाओ (निर्माण करवाओ), [36]जिनावर–जानवर, [37]बणखड़–वन

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा (सं.) हिन्दी साहित्य कोश (प्रथम खण्ड), पृ. 682।
2. डॉ. सत्यव्रत सिन्हा–भोजपुरी लोकगाथा, पृ. 3।
3. डॉ. सत्येन्द्र–लोकसाहित्य विज्ञान, पृ. 5।
4. डॉ. तेजनारायण लाल–मैथिली लोकगीतों का अध्ययन, पृ. 14।
5. डॉ. शंकर लाल यादव–हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, पृ. 20।
6. डॉ. भागीरथ कानोड़िया, गोविन्द अग्रवाल (सं.) कहावत सं. 209।